|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 17: श्रद्धात्रयविभागयोग

1/2 (श्लोक 1-10), रविवार, 04 जनवरी 2026

विवेचक: गीता प्रवीण ज्योति जी शुक्ला

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/Lsz3-aNbdPk

हमारे जीवन पर त्रिगुणों का प्रभाव

हमारी चिर-प्राचीन सनातनी परम्परा का निर्वाह करते हुए ईश-वन्दना, गुरु-वन्दना, राष्ट्र-वन्दना तथा सङ्कट-मोचन श्री हनुमान चालीसा के पाठ के साथ आज के सत्र का शुभारम्भ हुआ।

हम सभी अत्यन्त भाग्यशाली हैं कि हमें श्रीमद्भगवद्गीता से जुड़ने तथा पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ है।

ईश्वर ने स्वयं हमारा चयन किया है यह अवसर सभी को प्राप्त नहीं होता। पंञ्जीकरण तो बहुत से बच्चों ने किया था परन्तु कुछ ही बच्चे कक्षा में आ पा रहे हैं और उनमें से भी केवल कुछ ही विवेचन सत्र में सम्मिलित हो पा रहे हैं।

हम गीताजी के अर्थ को समझने का प्रयास कर रहे हैं, जिससे हम अपने जीवन को और अधिक सुन्दर बना सकें। जैसे-जैसे आप आगे पढ़ते जायेंगे, आपको अनुभव होगा कि आपमें स्पष्टता आती जा रही है। धीरे-धीरे सोचने-समझने की शक्ति बढ़ती जाएगी, विवेक विकसित होता जाएगा। अभी हम बहुत भ्रमित रहते हैं कि क्या करना है और क्या नहीं करना है? क्या उचित है क्या अनुचित है? किन्तु जैसे-जैसे हम आगे बढ़ते जायेंगे तथा अर्थ समझते जायेंगे हमारा यह भ्रम दूर होता जाएगा तथा जीवन उन्नत होता जाएगा। इस अवसर का हमें पूर्ण रूप से उपयोग करना चाहिए और श्रीमद्भगवद्गीता के माध्यम से अपने जीवन को निरन्तर सुन्दर बनाते जाना चाहिए।

हमने बारहवें, पन्द्रहवें तथा सोलहवें अध्याय का अध्ययन किया है। अब हम अध्याय सत्रह का अध्ययन कर रहे हैं।

हमने बारहवें में भक्ति योग का और पन्द्रहवें अध्याय में पुरुषोत्तम योग का अध्ययन किया।

सोलहवें अध्याय में दैवासुरसम्पद्विभाग योग में छब्बीस दैवीय गुणों की बात हुई थी कि एक अच्छे व्यक्ति में क्या क्या गुण होते हैं तथा वह व्यक्ति जो बुरा ही बुरा करता अथवा सोचता है उसमें क्या-क्या अवगुण होते हैं? हमें किन बातों का अनुसरण करना है अथवा नहीं करना है? यह सब हमने सोलहवें अध्याय में देखा था।

हो सकता है कुछ बच्चों ने इन गुणों का अनुसरण भी प्रारम्भ कर दिया हो और यदि नहीं किया हो तो अब अभी से करना प्रारम्भ कर

दें क्योंकि इससे आपके स्वभाव में ऐसी बहुत सी अच्छी बातें आयेंगी।

हम धीरे-धीरे दैवीय गुणों को अपना सकते हैं - यह प्रयत्न हमें करते रहना चाहिए। छोटे बच्चों को यह नहीं सोचना चाहिए कि हम अभी छोटे हैं हमें अभी इसकी आवश्यकता नहीं है तथा बड़े बच्चों को यह नहीं सोचना चाहिए कि हम बड़े हैं हमें इसकी क्या आवश्यकता है? चाहे हम छोटे बच्चे हों या बड़े-बूढ़े सभी को इन अच्छे गुणों की आवश्यकता होती है क्योंकि हम अपने जीवन को कितना अच्छा बना सकते हैं, कितना सुन्दर सोच सकते हैं - इसका प्रयास हमें करते रहना चाहिए।

आज का अध्याय है- श्रद्धात्रयविभाग योग।

यहाँ हम श्रद्धा की बात करेंगे। सोलहवें अध्याय के अन्तिम श्लोक में यह बात बताई गई है कि जो श्रद्धा से काम नहीं करता है, उसे सफलता नहीं मिलती है।

तस्मात् शास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥"

जो लोग श्रद्धा से कार्य नहीं करते हैं, उनको न सुख की प्राप्ति होती है न सफलता मिलती है।

गीता जी में पुनः-पुन: श्रद्धा शब्द का प्रयोग हुआ है अतः श्रीभगवान् ने इस अध्याय में श्रद्धा के बारे में विस्तृत ज्ञान दिया है। श्रद्धा तीन प्रकार की होती है - सात्त्विक, राजसिक तथा तामसिक।

बालसाधकों से बीच- बीच में प्रश्न किये गये।

प्रश्न- जो लोग दैवीय गुणों को अपनाना चाहते हैं, जो देवता बनना चाहते हैं, वे नमस्ते की मुद्रा में हाथ जोड़कर बताएँगे और जो आसुरी गुणों को अपनाना चाहते हैं, वे हाथ की मुट्ठी बाँधकर सामने हाथ करके दिखायेंगे।

प्रायः सभी बच्चों ने हाथ जोड़कर छब्बीस दैवीय गुणों को अपनाकर देवता बनने में रुचि प्रकट की। सभी छब्बीस दैवीय गुणों को अपनाकर देवता बनना चाहते हैं।

श्रद्धा का अर्थ क्या है?
किसी बात में कोई भी सन्देह किये बिना विश्वास करना।

हमें अपने माता-पिता पर पूर्ण विश्वास होता है, पूर्ण श्रद्धा होती है। क्या हमें कभी ऐसा लगता है कि वे हमारे साथ कुछ गलत करेंगे? नहीं, क्योंकि हमें उन पर पूर्ण श्रद्धा और विश्वास होता है।

यह शङ्कारहित, संशयरहित पूर्ण विश्वास ही श्रद्धा कहलाता है।

इसी प्रकार कुछ लोगों को श्रीभगवान् पर पूर्ण श्रद्धा और विश्वास होता है।

हमारे कुछ मित्र, शिक्षक अथवा सम्बन्धी होते हैं जिन्हें हम कोई भी बात बता सकते हैं। हमें यह ज्ञात होता है कि वह हमारी कोई भी बात किसी और को नहीं बतायेंगे। वह हमें कोई गलत सलाह नहीं देंगे। यह उनके प्रति हमारी श्रद्धा है।

एक साथ कई बातों पर भी हमारी श्रद्धा हो सकती है।

इस बात को हम एक कथा से समझते हैं। कछुए तथा खरगोश की कहानी सभी ने सुनी है। इस कहानी में दोनों में शर्त लगी कि वे

दोनों भागकर एक तालाब तक जाने की प्रतियोगिता करेंगे तथा यह देखेंगे कि कौन जीतता है? खरगोश तेज तो होता है किन्तु चुलबुला भी होता है। वह कछुए को चिढ़ाता है और अन्ततः थककर एक पेड़ के नीचे लेट जाता है। मैं थोड़ा आराम कर लूँ, फिर उठकर कर भाग लूँगा, परन्तु उसे नींद लग गई। जब वह सो कर उठा तो भागते हुए तालाब के पास पहुँचा। उसे लगा कि कछुआ तो धीरे-धीरे चलता है इसलिए वह तो पहुँच ही नहीं सकता किन्तु वह गलत था। कछुआ तो वहाँ पहले से ही पहुँच चुका था। अब कछुआ खरगोश को चिढ़ाने लग गया।

इस कहानी से हमें क्या शिक्षा मिलती है?
यदि कछुए को अपने ऊपर श्रद्धा और विश्वास नहीं होता तो वह कभी नहीं जीत सकता था

इसी प्रकार हमारे जीवन में होता है। जब हम पढ़ाई या कोई अन्य कार्य करते हैं तो कुछ लोग तो सकारात्मक सोचते हैं किन्तु कुछ लोग बिल्कुल नकारात्मक सोचते हैं कि उनसे वह कार्य होगा ही नहीं।जब हमने अपनी श्रद्धा को पहले ही समाप्त कर दिया अथवा उसे पर संशय कर लिया तो हम उस कार्य में कभी विजेता नहीं हो सकते। किसी कार्य को करने के पहले ही उसके बारे में पूर्व धारणा नहीं बनानी चाहिये। किसी भी कार्य को लेकर सकारात्मक विचार रखना चाहिये। जैसी श्रद्धा होगी वैसे परिणाम आयेंगे।

17.1

अर्जुन उवाच
ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य, यजन्ते श्रद्धयान्विताः|
तेषां(न्) निष्ठा तु का कृष्ण, सत्त्वमाहो रजस्तमः||17.1||

अर्जुन बोले - हे कृष्ण ! जो मनुष्य शास्त्र-विधि का त्याग करके श्रद्धापूर्वक (देवता आदि का) पूजन करते हैं, उनकी निष्ठा फिर कौन-सी है? सात्त्विकी है अथवा राजसी-तामसी

विवेचन- अर्जुन श्रीभगवान् से प्रश्न करते हैं कि ऐसे व्यक्ति, जिन्हें शास्त्रों के विषय में कोई विशेष ज्ञान नहीं है, जिन्हें न श्रीमद्भगवद्गीता का ज्ञान है, न वेदों का और न ही उपनिषदों का, परन्तु फिर भी वे अच्छे कर्म करते हैं, जैसे बड़ों के चरण स्पर्श करना, मस्तक पर तिलक लगाना, मन्दिर जाना, श्रीभगवान् की पूजा करना। उन्हें यह ज्ञान नहीं होता कि ऐसा करने से क्या फल प्राप्त होता है, ऐसे व्यक्ति जो शास्त्रों को जाने बिना भी श्रद्धा के साथ कर्म करते हैं, उनकी श्रद्धा किस प्रकार की कहलाएगी, सात्त्विक, राजसिक अथवा तामसिक?

शास्त्रों के अन्तर्गत वेद, उपनिषद, दर्शन-शास्त्र, मनुस्मृति, पाराशर स्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, रामायण, महाभारत, सभी पुराण, वैष्णव आगम, शैव आगम आदि- इन सबको शास्त्र कहा जाता है।

शास्त्र कोई एक पुस्तक नहीं है जो एक ही स्थान पर रखी हो। गीता-उपनिषद, वेद-पुराण रामायण-महाभारत दर्शन - यह सभी शास्त्रों के अन्तर्गत आते हैं।

इनमें जो बातें लिखी गई हैं, उसी आधार पर यहाँ बात हो रही है।
जिन्होंने वेद शास्त्र अथवा गीता उपनिषद नहीं पढ़ी है अथवा जिन्होंने कभी भी इन शास्त्रों का अध्ययन नहीं किया, उनकी श्रद्धा किस श्रेणी में आएगी?

17.2

श्रीभगवानुवाच
त्रिविधा भवति श्रद्धा, देहिनां(म्) सा स्वभावजा|

सात्त्विकी राजसी चैव, तामसी चेति तां(म्) शृणु||17.2||

श्री भगवान बोले - मनुष्यों की वह स्वभाव से उत्पन्न हुई श्रद्धा सात्त्विकी तथा राजसी और तामसी - ऐसे तीन तरह की ही होती है, उसको (तुम) मुझसे सुनो।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि श्रद्धा तीन प्रकार की होती है—सात्त्विक, राजसिक और तामसिक।

अब मैं तुम्हें इसके विषय में विस्तार से बताऊँगा।

सात्त्विक का अर्थ है—जितने भी अच्छे कार्य हैं, वे सब सात्त्विक के अन्तर्गत आ जाते हैं। सबके लिये अच्छा सोचते हैं, अच्छा करते हैं, ईश्वर की भक्ति करते हैं, दान करते हैं, किसी की सहायता करते हैं, ये सब सात्त्विक क्रिया और कर्म है।

राजसिक का अर्थ है—बहुत अधिक इच्छाएँ होना।
बहुत-से व्यक्तियों की इच्छाएँ बहुत अधिक होती हैं। कुछ व्यक्ति अपने व्यवसाय को और अधिक बढ़ाते जाते हैं। इसका अर्थ है कि उनकी राजसिक प्रवृत्ति बहुत अधिक है।

राजसिक का अर्थ है—
मनुष्य के अन्दर बहुत-सी इच्छाएँ होना और उन्हें पूरा करने के लिए अत्यधिक सक्रिय रहना। इसमें मनुष्य की आसक्ति वस्तुओं के प्रति बहुत अधिक बढ़ जाती है।

“यह मेरा है”, “यह मैंने बनाया है”, “यह मैंने किया है”, “मैंने यह काम किया”, “मैंने यह प्रतियोगिता जीती है”, “मैंने यह ट्रॉफ़ी प्राप्त की है”, “यह ट्रॉफ़ी मेरी है”, “कोई इसे छूना नहीं है”, “केवल मैं ही इसे छू सकता हूँ”—ये सारे भाव राजसिक भाव हैं।

ऐसा नहीं है कि मन में कोई इच्छाएँ आएँगी ही नहीं, किन्तु आवश्यकता है कि उतनी ही इच्छा होनी चाहिए जितनी आवश्यक हो।

जैसे हमारे पास बहुत-सी पोशाकें हैं, फिर भी नई पोशाक चाहिए; जूते हैं, फिर भी नए जूते चाहिए; घड़ी है, फिर भी नई घड़ी चाहिए; बस्ता है, फिर भी नया बस्ता चाहिए। नया-नया सामान अच्छा लगता है, इसलिए हम नया सामान लेना चाहते हैं।

यदि हम नया सामान लेते भी हैं तो पुराना सामान, पुरानी वस्तुएँ किसी ऐसे व्यक्ति को दान कर देते हैं, जिसे उसकी अधिक आवश्यकता है, तब तो ठीक है। यदि हम ऐसा नहीं करते और अपनी इच्छाओं को बढ़ाते जाते हैं, अधिक से अधिक वस्तुएँ इकट्ठी करते हैं, उतना ही उनमें हमारा लगाव बढ़ता जाता है और आसक्ति बढ़ती जाती है।

इस प्रकार बहुत-सी इच्छाएँ, बहुत-सी आसक्तियाँ, बहुत अधिक लगाव और अत्यधिक सक्रिय रहना—यह राजसिक प्रवृत्ति है।

तामसिक का अर्थ है—जिनका न सक्रिय रहना है, न उन्हें कोई कार्य करना है। उनके किसी भी कार्य में रुचि नहीं होती। केवल खाना और सोना ही उनका जीवन होता है।

इसका एक बहुत सुन्दर उदाहरण देखते हैं- जैसे हमने विभीषण, रावण और कुम्भकर्ण का नाम सुना है। हम इन तीनों के विषय में जानते हैं। ये तीनों भाई थे।

विभीषण हमेशा भक्ति-भाव में रहते थे, ईश्वर में लीन रहते थे, नाम-जप किया करते थे। विभीषण सात्त्विक व्यक्ति का उदाहरण हो गये।

रावण की बहुत अधिक इच्छाएँ थीं, जैसे—मुझे सोने की लङ्का चाहिए। वह अपने राज्य को हर समय बढ़ाता रहता था। रावण

राजसिक था क्योंकि उसे बहुत अधिक इच्छाएँ थीं और अपनी वस्तुओं से बहुत अधिक लगाव था।

कुम्भकर्ण केवल खाता था और सोता था। वह छः महीने खाता था और छः महीने के लिए सो जाता था।

इस प्रकार विभीषण सात्त्विक थे, रावण राजसिक था और कुम्भकर्ण तामसिक था। एक ही घर में तीन अलग-अलग प्रवृत्तियों के अलग-अलग श्रद्धा के व्यक्ति थे।

प्रश्न- श्रद्धा कितने प्रकार की होती है?
विकल्प— तीन, दो, पाँच या चार।
उत्तर- तीन
अधिकांश बच्चों ने सही उत्तर दिया कि श्रद्धा तीन प्रकार की होती है।

ऐसा नहीं होना चाहिए कि हमारे पास पहले से सब कुछ है, फिर भी हमें और चाहिए—वही वस्तुएँ और चाहिए, उनसे भी अच्छी वस्तुएँ चाहिए, जिनकी हमें आवश्यकता भी नहीं है।

प्रश्न- आपके अन्दर कौन-सी श्रद्धा अधिक है?
विकल्प-सात्त्विक के लिए एक, राजसिक के लिए दो तथा तामसिक के लिए तीन।
अधिकांश बच्चों ने सात्त्विक गुण के विषय में उत्तर दिया।

हमारे अन्दर वैसे तो तीनों प्रकार की श्रद्धाएँ होती हैं किन्तु उनमें से कोई एक श्रद्धा ऐसी होती है जो अधिक मात्रा में होती है। जो समझते हैं कि उनके अन्दर सात्त्विकता अधिक है, तो इसका अर्थ यह नहीं है कि उनके अन्दर राजसिकता और तामसिकता नहीं होगी, परन्तु सात्त्विकता अधिक मात्रा में होगी और राजसिकता तथा तामसिकता कम होगी।

किसी के अन्दर यदि तामसिक गुण अधिक होता है, तो वह कुछ भी नहीं करता, केवल खाता है और सो जाता है, कोई कार्य नहीं करता। इसका अर्थ है कि उसके अन्दर तामसिकता अधिक है।

इसी प्रकार जिनमें राजसिकता अधिक होती है, वे हर समय सक्रिय दिखाई देते हैं, हर समय कुछ-न-कुछ कार्य करते रहते हैं। ऐसे लोग राजसिक कहलाते हैं। उनके अन्दर सात्त्विकता कम होती है।

17.3

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य, श्रद्धा भवति भारत|
श्रद्धामयोऽयं(म्) पुरुषो, यो यच्छ्रद्धः(स्) स एव सः||17.3||

हे भारत ! सभी मनुष्यों की श्रद्धा अन्तःकरण के अनुरूप होती है। यह मनुष्य श्रद्धामय है। (इसलिये) जो जैसी श्रद्धावाला है, वही उसका स्वरूप है अर्थात् वही उसकी निष्ठा (स्थिति) है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं, "जो जैसी श्रद्धा वाला होता है, वह वैसा ही बनता जाता है।"
इसका अर्थ है कि हमारे मन में जैसे विचार आते हैं, वैसी ही हमारी श्रद्धा बनती जाती है और वैसे ही फिर आगे हम काम भी करते हैं। जैसे, हमने कछुए तथा खरगोश वाली कहानी सुनी है।

कछुआ बहुत धीमा चलता था लेकिन उसकी सोचने की जो पद्धति थी, उससे उसने वह दौड़ जीत ली थी। उसकी चाल (speed) बहुत धीमी थी तो भी वह जीत गया।

जो जैसा सोचता है, जो जैसी श्रद्धा वाला होता है, वह वैसा ही होता जाता है और वैसे ही वह काम करता है।

उसी प्रकार, हमारी जिस बात पर भी श्रद्धा होती है, हम वैसे ही बन जाते हैं। जैसे, यदि हमारी पढ़ाई में बहुत श्रद्धा है तो हम पढ़ाकू कहलाते हैं। ऐसा बहुत बच्चों के साथ हमने सुना होगा कि उनको सब पढ़ाकू बोलते हैं। हो सकता है कि आपमें से भी कुछ बच्चों को पढ़ाकू बोला जाता हो क्योंकि उनकी पढ़ाई में बहुत श्रद्धा है। उनको पढ़ना बहुत अच्छा लगता है। पढ़ाई में बहुत उनका अधिक विश्वास है।

जिस भी बात में हमारी श्रद्धा होती है, हम वैसे ही बनते चले जाते हैं। हमारी श्रद्धा इस बात पर निर्भर करती है कि हम कैसा सोचते हैं। सकारात्मक (positive) सोचते हैं या नकारात्मक (negative) सोचते हैं।
अब किसी को यूट्यूब में बहुत श्रद्धा है तो फिर क्या होगा? वह यूट्यूबर कहलाएगा। इसका अर्थ है कि वह सारा दिन यूट्यूब में ही लगा रहता है। इसका अर्थ है कि उनकी श्रद्धा यूट्यूब में बहुत अधिक है।

ऐसे ही, कोई क्रिकेटर है जैसे हम सुनते हैं, विराट कोहली, महेन्द्र सिंह धोनी, रोहित शर्मा आदि। इनकी श्रद्धा क्रिकेट में बहुत अधिक है इसीलिए ये क्रिकेटर कहलाए।

अब यदि मैं अभी क्रिकेट खेलने चली जाऊँ तो क्या मुझे क्रिकेटर बोलने लग जाएँगे?
नहीं! क्योंकि हम तो बस आनन्द के लिए खेलने जा रहे हैं। हम बहुत बड़े खिलाड़ी नहीं हैं। हम क्रिकेटर्स नहीं हैं।

किसी को बिस्तर पर पड़े रहने में, आलस्य में बड़ा आनन्द आता है तो उसको सब आलसी कहने लग जाते हैं।

जो गेम खेलने में बहुत निपुण (expert) है, वह गेमर बन जाता है। ऐसे ही किसी को गायन (singing) में बड़ा शौक है और वह बहुत अच्छा गाने लगता है तो वह गायक बन जाता है।
तो जिस भी बात में हमारी श्रद्धा होती है, हम वैसे ही बनते जाते हैं।

यदि कोई कहे कि मुझे गायन में बिल्कुल रुचि नहीं है तो फिर वह कभी गा ही नहीं सकती लेकिन यही यदि उसका शौक है और वह कहे कि मैं अच्छा गा सकती हूँ तो वह अच्छा गाना सीख जायेगी।

इसलिए, जैसी श्रद्धा हमारी होती है, हम वैसे ही बनते जाते हैं, फिर वह कोई भी विषय हो सकता है। वह सकारात्मक विषय भी हो सकता है तथा नकारात्मक विषय भी हो सकता है।

हमारे घर में हमारे भाई-बहन होते हैं। कई बार हम हँसी-मजाक में कुछ करते हैं लेकिन उसका प्रभाव अच्छा नहीं पड़ता है। हमारे छोटे भाई-बहन हों या बड़े भाई-बहन हों, हम उनको कभी-कभी उल्टा-सीधा बोलने लगते हैं - "तुम तो मूर्ख हो, तुम तो पागल हो, तुम तो बेवकूफ हो। तुम कुछ नहीं कर सकते। एकदम धीमे सीखते हो" आदि। तो अगर ऐसा-ऐसा हम बोलते हैं तो उनके मन में वह सब विचार बनने लग जाता है-

"हाँ! मैं मूर्ख हूँ, मैं बेवकूफ हूँ।"
हमने उनकी श्रद्धा को बिलकुल नकारात्मक बना दिया।

इस प्रकार हम जैसा देखते हैं, जैसा सुनते हैं, जैसा हमारा वातावरण होता है, वैसे ही हमारा मस्तिष्क काम करने लग जाता है। हम जितना सकारात्मक वातावरण में रहते हैं, उतना अच्छा सोचते हैं और जितना नकारात्मक सोचेंगे उतना गलत कार्य करेंगे।

जैसे विचार, वैसे कार्य तथा जैसे कार्य, वैसा हमारा स्वरूप।

हम अगर एक अच्छे व्यक्ति बनना चाहते हैं तब तो हमें सकारात्मक सोचना होगा। फिर सब सकारात्मक करना होगा। अब यदि हम सुबह उठकर कहें कि "आज मुझे अच्छा नहीं लग रहा है। आज तो बहुत थकान महसूस हो रही है।" ऐसे कहेंगे फिर तो सारा दिन हमें वैसा ही लगेगा। सारा दिन ऐसे ही थका-थका महसूस होगा।

स्वामी विवेकानन्द ने भी कहा था कि "मनुष्य विचारशील प्राणी है।" तो जो जैसा विचार करता है, जो जैसा सोचता है, वह वैसा ही बन जाता है।

इसलिए हम सभी को प्रयास करना चाहिए कि हम हमेशा अच्छा सोचें। केवल अपने लिए नहीं, सभी के लिए अच्छा सोचें। केवल अपने लिए सकारात्मक रहेंगे, दूसरों के लिए नकारात्मक रहेंगे तो वह भी ठीक बात नहीं है। दूसरों के लिए सकारात्मक रहेंगे, अपने लिए नकारात्मक रहेंगे तो वह भी ठीक नहीं है। दोनों के लिए सकारात्मक होना चाहिए- अपने लिए भी और हमारे हमारे आस-पास जितने लोग भी हैं, सभी के लिए अच्छा सोचें और स्वयं के लिए भी अच्छा सोचें।

इस भावना के साथ जब हम आगे बढ़ते हैं तो फिर हम सब अच्छा-अच्छा ही करते हैं। फिर हमें कोई समस्या नहीं होती। फिर हमें बुरा भी महसूस नहीं होता। फिर हमें अच्छा ही महसूस होता है।

श्रीभगवान् आगे के श्लोकों में श्रद्धा के विषय में और अधिक विस्तार से बताएँगे कि कहाँ-कहाँ सात्त्विक श्रद्धा है, कहाँ राजसिक श्रद्धा है और कहाँ तामसिक श्रद्धा है। आगे पूजा की बात की जाएगी कि साात्त्विक पूजा कौन सी है, राजसिक पूजा कौन सी है तथा तामसिक पूजा कौन सी है। आगे के श्लोकों में हम भोजन के विषय में भी जानेंगे कि सात्त्विक भोजन कौन सा है, राजसिक कौन सा है तथा तामसिक कौन सा है।

17.4

यजन्ते सात्त्विका देवान्, यक्षरक्षांसि राजसाः|
प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये, यजन्ते तामसा जनाः||17.4||

सात्त्विक मनुष्य देवताओं का पूजन करते हैं, राजस मनुष्य यक्षों और राक्षसों का और दूसरे (जो) तामस मनुष्य हैं, (वे) प्रेतों (और) भूतगणों का पूजन करते हैं।

विवेचन- जो अच्छे अथवा सात्त्विक लोग होते हैं, वे सदैव अच्छा ही सोचते हैं और अच्छे ही कर्म करते हैं, वे देवताओं का पूजन करते हैं। वे मन्दिर जाते हैं, पूजा-अर्चना करते हैं।

जो राजसिक स्वभाव के लोग होते हैं, वे यक्षों और राक्षसों का भी पूजन करते हैं। वे यज्ञ और हवन भी किसी न किसी भौतिक वस्तु की प्राप्ति के उद्देश्य से करते हैं।

जो तामसिक लोग होते हैं, वे भूत-प्रेतों की भी पूजा करते हैं। जैसा कि हम चलचित्रों (मूवीज) में देखते हैं, ये लोग रात्रि में श्मशान में जाकर भूत-प्रेतों की पूजा करते हैं। ऐसी पूजा वे किसी दूसरे का अहित हो जाए, इस भावना से करते हैं।
अब आगे इसे विस्तार से समझते हैं।

17.5

अशास्त्रविहितं(ङ्) घोरं(न्), तप्यन्ते ये तपो जनाः|
दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः(ख्), कामरागबलान्विताः||17.5||

जो मनुष्य शास्त्रविधि से रहित घोर तप करते हैं; (जो) दम्भ और अहंकार से अच्छी तरह युक्त हैं; (जो) भोग- पदार्थ, आसक्ति और हठ से युक्त हैं; (जो) शरीर में स्थित पाँच भूतों को अर्थात् पांच भौतिक शरीर को तथा अन्तःकरण में स्थित मुझ परमात्मा को भी कृश करने वाले हैं उन अज्ञानियों को (तू) आसुर निष्ठा वाले (आसुरी सम्पदा वाले) समझ। (17.5-17.6)

विवेचन-
प्रश्न-अध्याय सोलह में आए शब्द 'आर्जवम्' का तात्पर्य क्या है?
बच्चों को सम्भावित उत्तर (options) दिए गए।

बहुत से बच्चों ने स्क्रीन पर अपने उत्तर भेजे। अधिकांश बच्चों ने गलत उत्तरों पर निशान लगाया।
उत्तर-आर्जवम् का सही मतलब है सरलता।

कुछ लोग पूजन में अपने शरीर को अत्यन्त कष्ट में डालते हैं- जैसे कि हम टी.वी. धारावाहिक 'माता की चौकी' में देखते हैं कि कोई भक्त अपनी हथेली पर कपूर जला लेता है और दुर्गा माँ से अपनी मनोकामना पूर्ण करने की माँग करता है। ऐसा करना तामसिक प्रवृत्ति के अन्तर्गत आता है।

जो लोग मन्दिर में भी केवल लोगों को दिखाने के लिए जाते हैं, गणेश उत्सव में भी दिखावे के लिए जाते हैं, फिल्मी गानों पर नाचते हैं, यह सब तामसिक प्रवृत्ति में ही आता है।

ऐसा हमें नहीं करना चाहिए क्योंकि हम श्रीमद्भगवद्गीता पढ़ते हैं और यह जानते हैं कि क्या सही है और क्या गलत। हमें ऐसे कोई भी कार्य नहीं करने चाहिए, जिनका उल्लेख हमारे शास्त्रों में नहीं किया गया है। गणेश उत्सव में यदि कुछ करना हो, तो भजनों पर नृत्य करें, फिल्मी गानों पर नहीं।

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार श्रीभगवान् को केवल श्रद्धा-भाव ही प्रिय होता है।

17.6

कर्शयन्तः(श्) शरीरस्थं(म्), भूतग्राममचेतसः|
मां(ञ्) चैवान्तः(श्) शरीरस्थं(न्), तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान्||17.6||

विवेचन- पिछले श्लोक के सन्दर्भ में श्रीभगवान् कहते हैं कि जो व्यक्ति ऊपर बताए गए तामसिक कार्य करते हैं, वे आसुरी प्रवृत्ति के लोग होते हैं। आसुरी प्रवृत्ति के लोग कल्याणकारी नहीं होते, इसलिए हमें ऐसी आसुरी प्रवृत्तियों से दूर रहना चाहिए।

17.7

आहारस्त्वपि सर्वस्य, त्रिविधो भवति प्रियः|
यज्ञस्तपस्तथा दानं(न्), तेषां(म्) भेदमिमं(म्) शृणु||17.7||

आहार भी सबको तीन प्रकार का प्रिय होता है और वैसे ही यज्ञ, तप (और) दान (भी तीन प्रकार के होते हैं अर्थात् शास्त्रीय कर्मों में भी गुणों को लेकर तीन प्रकार की रुचि होती है,) (तू) उनके इस भेद को सुन।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि मनुष्यों को तीन प्रकार का भोजन प्रिय होता है। इसी प्रकार से यज्ञ, तप और दान भी तीन प्रकार के होते हैं। श्रीभगवान् यहाँ उनके भेद के विषय में बता रहे हैं। अभी हम आहार के विभिन्न भेदों के विषय में जानते हैं कि कौन सा भोजन सात्त्विक है, कौन सा राजसिक और कौन सा भोजन तामसिक है।

अगले श्लोक में हम यह जानने का प्रयास करेंगे कि हम कौन सा आहार खाते हैं।

17.8

आयुः(स्) सत्त्वबलारोग्य, सुखप्रीतिविवर्धनाः|
रस्याः(स्) स्निग्धाः(स्) स्थिरा हृद्या, आहाराः(स्) सात्त्विकप्रियाः||17.8||

आयु, सत्त्वगुण, बल, आरोग्य, सुख और प्रसन्नता बढ़ाने वाले, स्थिर रहने वाले, हृदय को शक्ति देने वाले, रसयुक्त (तथा) चिकने - (ऐसे) आहार अर्थात् भोजन करने के पदार्थ सात्त्विक मनुष्य को प्रिय होते हैं।

विवेचन- जो भोजन हमारी आयु को बढ़ाता है, हमारे भीतर सत्त्वगुण को बढ़ाता है, हमारी शक्ति को बढ़ाता है, जिसे ग्रहण करने से कोई रोग उत्पन्न नहीं होता, जो हमारे भीतर सुख और प्रसन्नता को बढ़ाता है क्योंकि उसे खाने से हमारे पेट में कोई समस्या उत्पन्न नहीं होती, ऐसा भोजन सात्त्विक भोजन कहलाता है।

सात्त्विक भोजन स्थिर, रसयुक्त तथा स्निग्ध होता है और वह हमारे शरीर में दीर्घकाल तक रहता है जैसे यदि हम घी, दूध, दही, मक्खन, सब्जियाँ आदि ग्रहण करते हैं, तो इनके पोषक तत्त्व हमारे शरीर में स्थिर रहते हैं और हमें दीर्घकाल तक लाभ पहुँचाते है। सात्त्विक भोजन, घर का बना हुआ दाल, चावल, रोटी, सब्जी, हमें बीमार नहीं करता अपितु लाभ ही करता है; कोई हानि नहीं पहुँचाता हैं। ऐसा भोजन सात्त्विक मनुष्यों को प्रिय होता है।

कभी-कभी हम राजसिक भोजन करे तो कोई बात नहीं है। अधिकतर राजसिक भोजन शरीर की पाचन क्रिया को नष्ट करता है, रोगी बनाता है ।

हमें सात्त्विक भोजन ग्रहण करना चाहिए।

17.9

कट्वम्ललवणात्युष्ण, तीक्ष्णरूक्षविदाहिनः|
आहारा राजसस्येष्टा, दुःखशोकामयप्रदाः||17.9||

अति कड़वे, अति खट्टे, अति नमकीन, अति गरम, अति तीखे, अति रूखे और अति दाह कारक आहार अर्थात् भोजन के पदार्थ राजस मनुष्य को प्रिय होते हैं, (जो कि) दुःख, शोक और रोगों को देने वाले हैं।

विवेचन- अति कड़वे, अति खट्टे, अति नमकीन, बहुत अधिक गर्म और तीखे, रूखे भोजन राजसिक मनुष्यों को पसन्द आते हैं।

पिज्जा, बर्गर, मोमो, ये सब राजसी भोजन है। इसमें पोषण तत्त्व बहुत कम होते हैं। राजसी भोजन का अत्यधिक सेवन शरीर के अङ्गों जैसे कि किडनी, लिवर को हानि पहुँचाते हैं।

ऐसे भोजन हमारे शरीर को अच्छे तत्त्व नहीं देते। लम्बे समय के लिए इनका परिणाम सकारात्मक न होकर नकारात्मक होता है। ऐसी स्थिति भी आ जाती है कि हमें भूख ही नहीं लगती, यह सबकुछ राजसिक भोजन का प्रभाव है।

हमें राजसिक भोजन से बचना चाहिए।

17.10

यातयामं(ङ्) गतरसं(म्), पूति पर्युषितं(ञ्) च यत्|
उच्छिष्टमपि चामेध्यं(म्), भोजनं(न्) तामसप्रियम्||17.10||

जो भोजन सड़ा हुआ, रस रहित, दुर्गन्धित, बासी और जूठा है तथा (जो) महान अपवित्र (मांस आदि) भी है, (वह) तामस मनुष्य को प्रिय होता है।

विवेचन- भोजन जब बासी हो जाता है तो उसमें से अप्रिय दुर्गन्ध आने लग जाती है। ऐसा भोजन तामसिक हो जाता है। फ्रिज मे रखा हुआ भोजन, जिस भोजन में अच्छी सुगन्ध नहीं है, वह सबकुछ तामसिक हो जाता है। अत्यधिक तीव्र गन्ध वाला भोजन भी तामसिक होता है जिसमें लहसुन, प्याज का उपयोग किया हो। हमारे प्रयत्न होने चाहिए कि हम सात्त्विक भोजन का ही उपयोग करें।

सभी ने एक कहावत सुनी होगी-

"जैसा खाए अन्न, वैसा होगा मन।"

जितना तीखा और कड़वा हम खाएँगे, हमारे मन में विचार भी वैसे ही होंगे। हम नकारात्मक होने लग जाते हैं, बहुत ही उग्र (agressive) भी सोचने लग जाते हैं इसलिए हमें सात्त्विक भोजन ही खाना चाहिए, जिससे हमारी सात्त्विक प्रवृत्ति बनेगी।

बच्चों से जब पूछा गया कि चटपटा भोजन कैसा लगता है, तो कुछ बच्चों बताया कि उन्हें चटपटा भोजन अच्छा लगता है पर बहुत से बच्चों ने बताया कि उन्हें सात्त्विक भोजन अच्छा लगता है।

प्रश्न- दैवासुसम्पद्विभागयोग अध्याय में कितने श्लोक हैं?
किसी ने कहा चौबीस, किसी ने अठ्ठाइस तो किसी ने तीस। इन बातों को सभी को जानना चाहिए।

प्रश्न- भक्तियोग, पुरुषोत्तमयोग, श्रद्धात्रयविभागयोग में कितने श्लोक हैं?
उत्तर- अधिकतर बच्चों ने सही उत्तर दिया है।
पूछे गए प्रश्न का छः बच्चों ने बहुत ही तीव्रता से उत्तर दिया, जो की अच्छी बात है।
सभी बच्चों की प्रशंसा तथा उत्साहवर्धन किया गया। श्रीहरिनाम सङ्कीर्तन के पश्चात प्रश्न-उत्तर सत्र का प्रारम्भ हुआ।

प्रश्नोत्तर-

प्रश्नकर्ता- निष्ठा दीदी
प्रश्न- मुझे नृत्य, कराटे, पढ़ाई पसन्द हैं। मेरी श्रद्धा कौन-सी हुई?
उत्तर- ये आप स्वयं ही बता सकते हैं कि आपकी श्रद्धा किसमें है। इन तीनों में आप कौन सा कार्य अच्छे से कर पाते हो? इन तीनों में से किसी एक को चुनना है तो आप किसको चुनोगे? आपको पता चल जायेगा कि आपकी श्रद्धा किसमें है।

प्रश्नकर्ता- निष्ठा दीदी
प्रश्न- तामसी क्या हुआ?
उत्तर- तामसी अर्थात् अक्रिय होना। आलसी, काम नहीं करना। केवल खाना और सोना। हमलोगों में कोई भी तामसी नहीं है। हम गीताजी पढ़ते हैं। बहुत काम भी करते है। जितनी आवश्यकता होती है उतना ही सोते हैं।
मैंने सुना है, बहुत से बच्चे विद्यालय भी बहुत कम आते हैं। खाली खाते और सोते हैं। आलसी प्रवृत्ति के होते हैं, उनको तामसी कहते हैं।

प्रश्नकर्ता- अवनि दीदी
प्रश्न- दीदी मैं अभी क्रिसमस की छुट्टियों में जगन्नाथजी के मन्दिर गयी थी।
उत्तर- बहुत अच्छा। छुट्टियों में इधर-उधर जाने की जगह आप धार्मिक स्थल जाकर आये।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!

हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||